वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

JUNE - 2026

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

तुझे किसकी ज़रूरत लगी है ?!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

मुमुक्षु :– (परिणामोंके) अवलोकनके लिये एकान्तमें बैठें?

पूज्य भाईश्री :– हाँ ठीक है, परंतु केवल एकान्तमें बैठकर ही अवलोकन करना बादमें दुर्लक्ष्य हो जाये, इसकी सावधानी न रहे, ऐसा नहीं होना चाहिये। अवलोकनके लिये एकान्तमें बैठना ठीक है, आपको स्वरूपका चिंतन करनेके लिये, इसका निश्चय और पहचान करनेके लिये (एकान्तमें) बैठना ठीक बात है। इसे ध्यानमें बैठना नहीं कहते। ध्यान तो एकाग्रताका प्रयत्न और पुरुषार्थ है। स्वरूपका विचार करनेके लिये एकान्तकी पसंदगी ठीक है कि दूसरे कार्योंसे, बाह्य कार्योंसे निवृत्ति लेकर करें। परंतु फिर प्रवृत्तिकालमें वह विषय की बिलकुल विस्मृति हो जाये, उदयकालमें सब भूल जायें ऐसा नहीं होना चाहिये। इस बातकी जागृतिपूर्वक वह प्रवृति होनी चाहिये। वरना क्या होगा कि चलो एक घण्टे या दो घण्टा एकान्तमें बैठकर तत्वका चिंतन या तत्वका विचार आदि कुछ तो किया! कुछ तो किया न! आत्मा हेतु कुछ तो किया न! अब संसारके कार्य करें और ये जो भी कार्य हमारे जिम्मे हैं वह सब पूरे करें और इसमें एकाकार हो जाये, तो ऐसी कार्यपद्धति भी ठीक नहीं है। अर्थात् अवलोकन भी धारावाहीरूपसे रहना ज़रूरी है।

मुमुक्षु :– व्यवसाय संबंधित विचार करनेके लिये तो एकान्ततकी आवश्यकता नहीं पड़ती। शोरगुलके बीच भी एकाग्रता रहती है!!

पूज्य भाईश्री :– चलते–फिरते, बीमार हो, तकलीफ़ हो तो भी उसका विचार तो करता है! वहाँ आपको व्याधि भी बाधारूप नहीं होती।

मुमुक्षु :– इसके लिये एकान्त खोजना नहीं पड़ता। मेरा कहना यों है कि तत्त्वविचार या आत्मविचार करते वक्त एकान्त होना ही चाहिये – ऐसा नहीं है। खुदको रस लगे कि...

पूज्य भाईश्री :– चाहे जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें जीवको वही चलता है। वही चले उसे, जब तो जीवकी रुचि योग्य है।

मुमुक्षु :– इसमें practice है भाईश्री! अनादिकालसे जीव इसका आदी हो चुका है।

पूज्य भाईश्री :– हाँ, वह तो सीधी बात है। practice है और दूसरा क्या है कि जीवको ज़रूरत लगी है। ज़रूरत बहुत बुरी चीज़ है। अगर मुझे पैसेकी ज़रूरत है तो व्यवसायका विचार, पैसे कमानेके लिये कोई भी व्यवसाय, प्रक्रिया, तत्संबंधित विचार चाहे जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें भी जीव करेगा ही क्योंकि उसकी ज़रूरत जो लगी है! यहाँ पर आपको ज़रूरत लगी है कि नहीं यह मूलभूत बात है। जिसकी ज़रूरत लगे तत्संबंधित पुरुषार्थ आप रोकना चाहो तो भी नहीं रोक सकोगे। यह बात तो सर्व

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५२, अंक-३४२, वर्ष-२८, जून-२०२६

कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

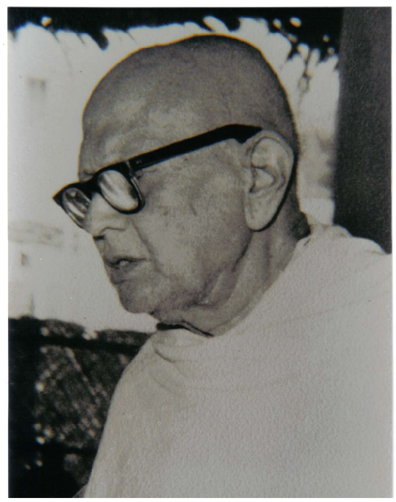

प्रश्न :– (हमें) बहुत समयसे तत्त्वका अभ्यास करनेपर भी आत्मा क्यों प्राप्त नहीं होता?

उत्तर :– आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ प्रभु है, इसके अतीन्द्रिय आनन्दकी तीव्र प्यास लगे, आत्माके सिवाय अन्य कहीं भी मिठास न लगे, रस न आए, जगतके पदार्थोंका रस फीका लगे, संसारके रागका रस उड़ जाए। अहो!! जिसके इतने-इतने बखान होते हैं – वह आत्मा, अनन्तानन्त गुणोंका पुंज प्रभु है कौन? ऐसा आश्चर्य लगे, उसकी लगनी लगे, उसकी धुनमें चढ़े, उसे आत्मा मिले ही; न मिले ऐसा हो ही नहीं सकता। जितना (पुरुषार्थरूप) कारण हो उतना ही कार्य होगा। कारण बिना कार्य नहीं होता, कारणकी न्युनतासे भी कार्य नहीं होता। जिसे आत्माके आनन्द स्वरुपकी अन्तरमें सच्ची लगनी लगे, छटपटाहट लगे, स्वप्नमें भी वह ही वह रहे – उसे आत्मा प्राप्त होता ही है। ३७५

*

जिन्हें आत्माके स्वरूपकी रुचि हुयी है, उन्हें शुभराग आते हैं, परन्तु उन्हें रागसे विरक्तिरूप वैराग्य होता है और आत्माकी अस्ति-ओरका शान्त उपशम रस होता है। राग होने पर भी रागसे आंशिक रूपसे पृथक् रहता है – इतना उपशम रस है। जिन्हें आत्माकी सच्ची रुचि नहीं उनके शुभभाव शुष्क और चंचल होते हैं। उन्हें निज-स्वभावका आश्चर्य और महिमा न आए व अन्य पदार्थोंका आश्चर्य और महिमा आए – उनके शुभभाव रुक्ष और चंचलता वाले होते हैं। ३७६

*

अरे भाई! तूँ कहाँ रुक गया? बाहरमें ही बाहरमें रुक गया, तब आत्मप्राप्ति कहाँसे हो? जैसे घरमें आनन्दका प्रसंग हो, और कोई परिवार-जन सन्ध्या तक घर न लौटे तो बुजुर्ग कहते हैं कि अरे भाई? तूँ सारे दिन कहाँ रुक गया? वेसे ही श्रीगुरु

कहते हैं कि अरे भाई! इस परमानन्दके धामरूप आत्मामें तूँ नहीं आया, और बाहर ही बाहर कहाँ रुक गया? कितने तो संसारमे पापके कार्योमें रुके रहते हैं और वहाँसे निकले तो शुभरागके काममें बाहर ही बाहर रुक कर, स्वयंके भगवानको भूल जाते हैं। जो स्वयंके अन्तरमें परमात्मा विराजते हैं – वहाँ नहीं आता उसे श्रीगुरु उलाहना देकर– करुणासे अन्तरमें बुलाते हैं। ३७७

*

भाई! सबकुछ आत्मामें भरा हुआ है, बाहरमें कुछ नहीं है। आत्मामें ज्ञान और सुख भरा हुआ है – वहाँ देख, वहाँ नज़र कर तो तुझे ज्ञान और सुख मिलेंगे। बाहरमें कहीं भी सुख नहीं है। अरे! एक बेटा मर जाए और पीछे घरके लोग रोते हैं कि अरे बेटा! तेरे बिना यह महल और मकान स्मशान जैसे लगते हैं। वैसे ही भाई! आत्माको जाने बिना बाहरमें सब कुछ स्मशान जैसा है। ३७८

*

अपनेमें केवलज्ञान प्रकट करना – यह तो जीवका स्वभाव है। यह प्रकट नहीं हो सकता– ऐसा न मान। केवलज्ञान प्रकट करना यह दुष्कर है, ऐसा न मान। जीवको परमाणु बनाना हो तो यह नहीं हो सकता। अरे! रागको नित्य रखना हो तो वह भी नित्य नहीं रख सकता, परन्तु शुद्धता प्रकट करना – यह तो जीवका स्वभाव है। यह कैसे न हो सके? यह कैसे कठिन है? जीवमें स्थिर होना, शुद्धता प्रकट करनी – यह तो जीवका स्वभाव होनेसे हो सकता है। अतः ''न हो सके'' ऐसी मान्यतारूप शल्य छोड़ दे। ३७९

*

आत्मार्थी हठ नहीं करते कि मुझे झटपट मेरा काम करना है। स्वभावमें हठ काम नहीं आता। मार्ग सहज है – हठसे, उतावलीसे, अधीरतासे मार्ग हाथ नहीं आता। सहज मार्गको पानेके लिये धैर्य और विवेक चाहिए। ३८०

*

प्रश्न :– इस आत्माका स्वरूप ख्यालमें आने पर भी वह प्रकट कैसे नहीं होता?

उत्तर :– इसके योग्य पुरुषार्थ चाहिए। अन्तरमें अपार शक्ति भरी है – उसका माहात्म्य आना चाहीए। वस्तु तो प्रकट ही है। वह तो पर्याय अपेक्षासे अप्रकट कहलाती है। ऐसे तो वस्तु प्रकट ही है, कोई आड़ या आवरण नहीं है। प्रथम तो वस्तुका माहात्म्य भासित होना चाहिए। भान हो तो माहात्म्य आए – ऐसा नहीं है, यद्यपि कितने ही ऐसा मानते हैं। परन्तु प्रथम माहात्म्य भासित हो तो माहात्म्य आनेपर; भान होता है – ऐसा है। ३८१

*

आत्माकी पहचान करानेका लिए ''ज्ञान सो आत्मा, ज्ञान सो आत्मा'' – ऐसा कहा है। कारण ज्ञान तो प्रकट अंश है, और आनन्दका अंश तो प्रकट नहीं है, प्रकट तो आकुलता है; इसीलिए ज्ञानके प्रकट अंश द्वारा आत्माकी पहचान करायी है। ज्ञानके प्रकट अंशको अन्तर्मुख करे, अर्थात् अखण्ड व स्वाकार हो जाए (द्रव्य–गुण शुद्ध हैं वैसे ही पर्याय भी शुद्ध हो जाती है)। आत्माको ज्ञानके अंशसे पहचान करानेका मूल कारण तो यह है। ३८२

*

(पर-सन्मुख ज्ञानमें होनेवाले पर-लक्ष्यको छुड़ाना और निजस्वरूप अस्तित्वको वैद्य-वेदकरूप जानना योग्य है - इस न्यायसे ...) जीवको ज्ञेय -ज्ञायक सम्बन्धी भ्रान्ति रह जाती है कि छः द्रव्य तो ज्ञेय हैं व आत्मा उनका ज्ञायक है। परन्तु जीवसे भिन्न पुद्गल आदि छः द्रव्य ज्ञेय और आत्मा उनका ज्ञायक है - ऐसा निश्चयसे नहीं है। अरे! 'राग' ज्ञेय और 'आत्मा' ज्ञायक - ऐसा भी (परसम्मुखतासे) नहीं है। पर द्रव्योंसे लाभ तो नहीं, बल्कि पर द्रव्य ज्ञेय और तूँ उनको जानने वाला -सचमुच तो ऐसा भी नहीं है। मैं जाननेवाला हूँ, मैं ही स्वज्ञेय हूँ, मैं ही स्वयं को जानता हूँ। निज अस्तित्वमें जो है - वही स्वज्ञेय है, ऐसा परमार्थ बतलाकर पर-ओरका लक्ष्य छुड़ाया है। ३८३

*

अपनी अपेक्षासे अन्य द्रव्य असत् हैं, स्वयं ही सत् है। स्वयं ही स्वयंका ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञानरूप सत् है। अतः स्वयंके सत्का ज्ञान करना। स्वयंके सत्का ज्ञान करने पर अतीन्द्रिय आनन्दकी झलक आए बिना रहती ही नहीं, और जो आनन्द न आए तो उसने निज सत् का यथार्थ ज्ञान किया ही नहीं। मूल बात तो अन्तरमें ढ़लना है - यही सम्पूर्ण सिद्धांतका सार है। ३८४

*

भले ही जीव तथा राग भिन्न रहकर एक क्षेत्रमें रहें तो भी दोनों कभी भी न तो एक रूप हुए और न ही हो सकते हैं। अतः तूँ सर्व प्रकारसे प्रसन्न हो। प्रभु! तेरी चीज! कभी राग रूप हुई नहीं, इसीलिए तूँ तेरा चित् उज्जवल कर, सावधान होकर रागसे भिन्नरूप आनंदस्वरूपका अनुभव कर। प्रसन्न होकर भेद-ज्ञान पूर्वक ऐसा अनुभव कर कि यह 'स्वद्रव्य ही मैं हूँ'। ३८५

*

यह आत्मा है सो ज्ञायक अखण्ड स्वरूप है। राग, कर्म व शरीर तो उसके नहीं, लेकिन पर्यायमें जो खण्ड-खण्ड ज्ञान है वह भी उसका नहीं। जड़इन्द्रिय तो उसकी नहीं, लेकिन भावेन्द्रिय व भावमन भी उसके नहीं। एक-एक विषयको जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय; खण्ड-खण्ड ज्ञान है - यह पराधीनता है ,परवशता है, यह दुःख है। ३८६

*

ज्ञायकस्वभावका जहाँ अन्तरमें भान हुआ, जाननेवाला जाग उठा कि 'मै तो एक ज्ञायकस्वरूप हूँ' - ऐसा जब अनुभवमें आया, तब ज्ञानःघाराको कोई नहीं रोक सकता। चाहे जैसा रोग हो, पर वह तो शरीरमें है, वह आत्मामें कहाँ है? रोग है उसे आत्माने जाना है, परन्तु आत्माने उसमें मिलकर नहीं जाना है । ३८७

*

दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे आत्मा प्राप्त नहीं होता, परन्तु जो वस्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमती होती है, वही आत्मा है - ऐसे व्यवहार द्वारा परमार्थ समझा जाता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्रका आलम्बन नहीं करवाते हैं, पर परमार्थका आलम्बन कराया है। दर्शन-ज्ञान-चारित्रको जो प्राप्त हो सो ही आत्मा है - ऐसा कहकर भेद द्वारा अभेदको बतलाया है। जब भेद द्वारा बतलाया तब भेदका आलम्बन नहीं करवाया, बल्कि भेदका आलम्बन

छुड़वा कर अभेद आत्माका आलंबन करवाया है – ऐसा समझना। ३८८

*

यहाँ तो जो ज्ञान आत्माके लक्ष्यपूर्वक होता है उसे ही ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान इन्द्रियके लक्ष्यसे होता है, शास्त्रके लक्ष्यसे होता है, उसे ज्ञान ही नहीं कहते। त्रिकाली ज्ञायक भगवानके आश्रय बिना ग्यारह-अंगके ज्ञानको भी ज्ञान नहीं कहते। यह खंड-खंड ज्ञान है, अतः दुःखका कारण है। चैतन्य-ज्ञानपिण्डको ध्येय बनाकर जो ज्ञान होता है वह ज्ञान भले ही अल्प हो फिर भी सम्यक्ज्ञान है। ऐसे आत्मज्ञान रहित खंड-खंडज्ञान द्वारा हज़ारों लोगोंको समझाना आता हो तो भी वह ज्ञान, अज्ञान है; और वह खंड-खंड ज्ञान परवश होनेसे दुःख है। पर-सत्तावलम्बी ज्ञानको ज्ञान कहते ही नहीं। ३८९

*

अहो! जिसका क्षेत्र मर्यादित होने पर भी जिसके कालका अन्त नहीं, जिसके गुणोंका अन्त नहीं, – एसी अनन्त स्वभावी चैतन्य ज्योति सदा एकरूप चैतन्य स्वरूप ही रही है। आत्मवस्तु ही गम्भीर स्वभावी है, जब तक इसकी गम्भीरता भासित न हो तब-तक वास्तविक महिमा नहीं आती। इसकी गम्भीरता भासित होने पर आत्माकी ऐसी महिमा आती है कि यह महिमा आते-आते विकल्पोंको उलांध जाती है, विकल्पोंको तोड़ना नहीं पड़ता, पर वे टूट जाते हैं और अतीन्द्रिय आनन्दका स्वानुभव होता है। ३९०

*

'ज्ञान और वैराग्यकी अचिन्तय शक्तिसे पुरुषार्थकी धारा प्रकट कर'। रागसे भिन्न हुए ज्ञानसे और रागकी विरक्तिरूप वैराग्यसे, धारावाही पुरुषार्थ कर। यर्थाथ दृष्टि करके ऊपर आ जा, अर्थात् रागसे भिन्न हो जा। प्रभु! तू तो ऐसा है कि तेरी भूमिमे अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द पके। पुण्य-पापका कुआँ तो विषैली गैस वाला है, उसको देखने जाते ही आत्मा मर जाता है; और बगलमें चैतन्यकुआँ है जिसको देखने जाए तो क्रमशः कर्मोंका नाश होता है, संसार मर जाता है और जीव जी उठता है। ३९१

*

प्रश्न :- तत्वका निर्णय करनेमें कितने वर्ष लगाना?

उत्तर :- कार्य हो जाए तो अन्तर मुहूर्तमें हो जाए, अन्यथा इसके निर्णयमें पूरा जीवन भी बीत जाए। इसमें कालका तो प्रश्न ही कहाँ है? जो वीर्य विपरीततामें लगा है, उसे पूरा पलटकर अपनी ओर ढाले तो कार्य हुए बिना न रहे। जितना कारणरूप पुरुषार्थ करना चाहिए उतना पुरुषार्थ न करे तब-तक कार्य नहीं होता। ३९२

*

प्रश्न :- आत्माकी रुचि हो पर इस भवमें सम्यक्दर्शन हो तो अगले भवमें हो जाए?

उत्तर :- आत्मकी सच्ची रुचि हो उसे सम्यक्दर्शन होता है – होता है और होता ही है। जिसे यथार्थ रुचि और लक्ष्य हो उसे सम्यक्दर्शन न हो – ऐसा तीन कालमें भी नहीं हो सकता। वीर्यमें हीनता नहीं आनी चाहिए। वीर्यमें उत्साह और निःशंकता आनी चाहिए। कार्य होगा ही – ऐसा उसके निर्णयमें आना चाहिए। ३९३

*

जिसे आत्माकी सच्ची रुचि जगे उसे चौबीसों घंटे उसीका चिन्तन-घोलन और खटक रहा करती है, नींदमें भी उसी-उसीका रटन चला करता है। अरे! नरकमें गिरे हुए नारकी भीषण वेदनामे हों, और यदि पूर्वमें सत् सुना हो तो उसका स्मरण कर एकदम अन्तरमें उतर जाते हैं, उन्हें प्रतिकूलता छूती ही नहीं न। और स्वर्गकी अनुकूलतामें हो तो भी अनुकूलताका लक्ष्य छोड़कर अन्तरमें उतर जाते हैं। यहाँ तनिक प्रतिकूलता हो तो अरे! मेरे ऐसा है और वैसा है, ऐसा कर-करके अनन्त काल गँवाया है। अब तो इनका लक्ष्य छोड़कर अन्तरमें उतर जा न। भाई!! इसके बिना सुखका अन्य कोई मार्ग नहीं। ३९४

*

अहो! यह आत्मतत्त्व तो गहन है। आखें बंद करके बाहरके पांचो इन्द्रियोंके व्यापारको बन्द कर, मन द्वारा इसका विचार करे कि अहो! यह आत्मवस्तु अचिन्त्य है। ज्ञायक...ज्ञायक...ज्ञायक ही है – ऐसा विकल्पसे निर्णय करते हैं, तथापि वह अभी परोक्ष निर्णय है। परोक्ष, अर्थात् प्रत्यक्ष स्वानुभव नहीं हुआ, अतः उसे परोक्ष कहा। मनसे बाहरका बोझा बहुत घटा ड़ाले, तब मन अन्तरके विचारमें स्थिर हो और वहाँसे भी फिर खिसक कर अन्तर-स्वभावकी महिमामें मग्न हो, तब आनन्दका अनुभव होता है – इसे सम्यक्दर्शन कहते हैं। ऐसा वस्तुका स्वरूप है और उसे पानेका यह उपाय है। इसमें कोई व्याकुल होने जैसी बात नहीं है। स्वभावका आश्रय तो बेचैनीका नाश कर ड़ालता है। अभी लोग बाह्य क्रियाकाण्डमे बह गये हैं। उन्हें तो मन द्वारा भी सत्यनिर्णय करनेका अवसर नहीं है। ३९५

*

आहाहा! क्षणमें अनेक प्रकारके विचित्र रोग हो जाए – एसा शरीर है। कहाँ शरीर और कहाँ आत्मा! इनमें तनिक भी मेल नहीं है। अहा! ऐसी दुर्लभ मनुष्य देह मिली और ऐसा वीतराग मार्ग महाभाग्यसे मिला है, अतः मनका अधिकतम बोझा घटाकर आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करना चाहिए। पांच इन्द्रियोंके रसरूप बोझेको हटाकर आत्माको पहचाननेके विचारमें लगना चाहिए। अन्दरमें अनन्त आनंद आदि स्वभाव भरे हैं – ऐसे स्वभावकी महिमा आए (पहचान-होने पर) तब अन्तर पुरुषार्थ स्फूरित हुए बिना रहे ही नहीं। ३९६

*

प्रश्न :- प्रथम अशुभ-रागको टाले और शुभ-राग करे तो पीछे शुद्ध भाव होता है – ऐसा क्रम तो है न?

उत्तर :- ऐसा क्रम नहीं। सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन प्रकट किया जाता है, बादमें शुभ-राग एकदमसे नहीं टाल सकता; इसलिए पहले अशुभ-रागको टालने पर शुभ-राग आते हैं। यह साधकके क्रमकी बात है। ३९७

*

प्रश्न :- तो अज्ञानीको क्या करना?

उत्तर :- अज्ञानीको पहले वस्तुस्वरूपका यथार्थज्ञान कर, आत्माका भान करना चाहिए – यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका सच्चा उपाय है। शुभ-रागरूप क्रिया-काण्ड करना – वह सच्चा उपाय नहीं हैं। ३९८

संगका विवेक

बहिनश्रीके वचनामृत, बोल–२२९ पर प्रवचन

दि. २५–११–१९८७, प्रवचन क्र.–१८४

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(गतांकसे आगे...)

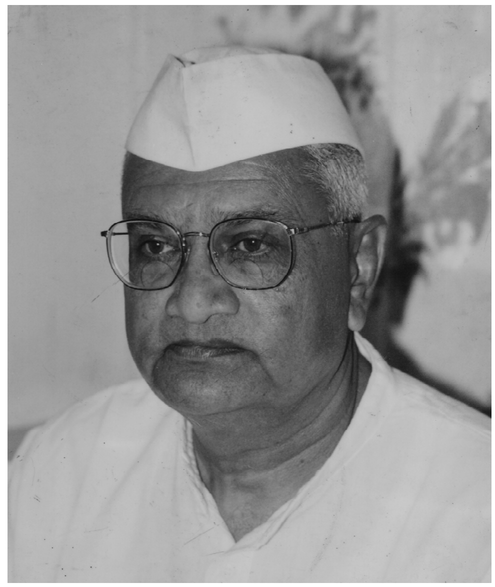

अब कहते हैं कि *'तुझे शुद्धि बढ़ाना हो, दुःखसे छूटनेकी भावना हो, तो अधिक गुणवाले या समान गुणवाले आत्माके संगमें रहना।'* असंगपने – बिना किसीके संग अकेले रहनेका तेरे से नहीं बन पाता हो, और तेरा ध्येय, तेरा प्रयोजन यदि शुद्धि बढ़ानेका हो, इस संसारके भयंकर दुःखोंसे छूटनेकी तेरी भावना हो तो यह बात है। इतनी शर्त रखी है, इस प्रकारका अति दुःख तुझे लगता है क्या? और अशुद्धिसे छूटकर शुद्धिकी ओर जाना है तुझे क्या? तो अधिक गुणवान या समान गुणीके संगमें रहना। अधिक गुणवान यदि तुझे कोई न मिले तो समान गुणवालेके संगमें रहना। परन्तु अवगुणीके संगमें नहीं रहना। जैसे हमारे सगे हैं, हमारे नज़दीकमें पड़ोसमें रहते हैं इसलिये उनका संग ज्यादा सुलभ रहता है, इसप्रकारसे भी संगके विषयमें लापरवाही बरतने जैसी नहीं है।

मुमुक्षुके लिये बहुत उपयोगी, अमूल्य मार्गदर्शन है इस विषयमें। क्योंकि एक तो मुमुक्षुकी दशा बहुत कमज़ोर है। अपनी खुदकी शक्तिको अभी प्रगट नहीं कर सका है इसलिये बहुत कमज़ोर स्थिति है। ऐसी कमज़ोर स्थितिमें और–और कमज़ोरी बढ़ती जाये ऐसे कारणोंका सेवन करता रहे तो गिरनेमें ज्यादा देर नहीं लगती। अतः बहुत सुंदर मार्गदर्शन दिया है कि अधिक गुणवानके संगमें रहना या समगुणीके संगमें रहना। तुझे ऐसा लगे कि यह ठीक है, मेरेसे गया–बीता नहीं है परन्तु संगमें रहने पर विशेष विचारोंका आदान–प्रदान हो रहा है और इसप्रकार अनेक पहलुओंको समझना आसान होता है, बोध मिलता है, मेरा सुधार होनेमें उपयोगी है ऐसी जाँच और प्रतीति खुदको होनी चाहिये। जिसके संगमें रहता हो इसके बारेमें इतनी जानकारी होनी चाहिये। ख़याल होना चाहिये।

'लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होनेका कारण होगा।' लौकिकजनोंका संग करेगा तो तेरे पुरुषार्थकी उग्रताके निमित्त तो वे हैं नहीं। उसमें ऐसी बातें, ऐसे प्रकार, ऐसे परिणाम सब ऐसे ही होंगे जो तेरे आत्मिक पुरुषार्थमें निमित्तभूत होनेवाले हैं नहीं। लौकिक संगवाले जगतके जीवोंको तो पाँच

इन्द्रिय विषयोंका रस तीव्र होता है। जिसको जो विषय प्रिय होगा उसकी महत्ता किये बिना वह रहेगा ही नहीं। कम से कम पैसेकी महत्ता तो किये बिना रहेगा ही नहीं। देखो! 'अमरिका'में इतने- इतने लोग पैसेवाले होते हैं, 'अमरिका'में ऐसा होता है, 'जापान'में ऐसा होता है, यहाँ ऐसा, वहाँ ऐसा...इसकी प्रशंसा, इसकी महिमा, ये सब बातें ही मिलेंगी उसके पास।

मुमुक्षु :- लौकिक संग माने क्या?

पूज्य भाईश्री :- लौकिक संगमें एक तो जैसे जो मुमुक्षु नहीं हैं ऐसे जीवोंका ज्यादा संग नहीं करना एक तो वह बात है। कार्यवश, ज़रूरत जितना मिलना हो बस! इसके बजाय उसके संगमें रहना या उसके संगमें रहनेका रस होगा तो वह नुकसानका कारण होगा। आपसमें मुमुक्षु-मुमुक्षुके बीच भी (इसका ध्यान रखना है।) क्योंकि आखिरमें एक सीमारेखा बाँध दी है कि सबको अपनी भूमिकानुसार इसका विवेक करना है। (अतः) मुमुक्षु-मुमुक्षुके बीचमें भी अपनी बराबरीवालेका या विशेष गुणवान हो इसका संग करने योग्य है। यह विवेक है। अपनेसे हीन योग्यतावालेसे प्रीति या संग करना सो अविवेक है वह संग नहीं परन्तु अविवेक है।

वैसे तो मुमुक्षुको असंगताकी ही भावना होती है क्योंकि असंगतत्वके प्रति उसे जाना है फिर भी संग करनेका विकल्प गुणवानके लिये ही आयेगा। वह ऐसे कि असंगतत्वकी प्रीतिवाले, रसयुक्त, रुचिवंत जीव होंगे तो वे मेरी रुचिको, रसको वृद्धिगत करनेमें निमित्त होंगे। वह जीवको ऐसा ही भाव, ऐसा ही विकल्प आयेगा, ऐसा ही रस आयेगा, ऐसा ही भाव आयेगा। ऐसे भाव न आये और अगर विभिन्न लोगोंके संगकी अपेक्षा रहती हो और रस आता हो तो खुदको जो पुरुषार्थ उजागर करना है वह उजागर नहीं हो सकेगा। यदि मुमुक्षुको थोड़ी जागृति आयी होगी तो भी मंद हो जायेगी। तीव्र तो नहीं होगी परन्तु मंद हो जायेगी। ऐसी परिस्थिति होगी।

मुमुक्षु :- विशेष गुणवान माने क्या?

पूज्य भाईश्री :- विशेष गुणवानमें अगर ज्ञानी मिल जाये तो इसकी तुलनामें तो कोई नहीं आता। - ज्ञानी गुणवान हैं। यदि ज्ञानी न मिलें तो मुमुक्षुओंमें भी मेरेसे अधिक गुणवान कौन हैं यह बात समझनी होगी, यह खुदको निश्चय करना पड़ता है और यह नक्की करके उसके संगमें जाना, संग करना तो उसका करना, वरना किसीका नहीं करना। संगमें रहना हो तो।

प्रश्न :- (कोई त्यागी, क्षयोपशमवाला हो तो)?

समाधान :- नहीं, इसकी बात नहीं। गुणकी बात ली है। यहाँ त्याग और क्षयोपशम दो की बात नहीं ली। दोमेंसे एक भी शब्दकी बात नहीं है। सरलता आदि गुण हों, आत्माका रस हो, आत्मप्राप्तिकी भावना हो और आत्मप्राप्तिकी दिशामें जो अग्रेसर हो और पुरुषार्थकी तैयारी हो, संक्षेपमें कहें तो पात्रतावान हो।

प्रश्न :- सामान्यतः मुमुक्षु हो तो संग करने जाये परंतु वह गुणवान है कि नहीं...

समाधान :- सामान्यतः ऐसा बनता है। परन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि प्रवचनकार हो वह अधिक

गुणवान हो और श्रोता हो वह हीन गुणी हो, यह जरूरी नहीं है।

मुमुक्षु :- कोई इतने शांत हों कि पता ही न चले कि कितने गुणवान हैं।

पूज्य भाईश्री :- इसमें ऐसा है भाई! कि जिसकी नज़र जिस बात पर हो, जिस विषय पर हो, जिनकी खोज उस विषयमें हो, कि मुझे यदि किसीके संगमें रहना है तो पात्रतावान मिले तो उसके संगमें रहना है, वरना अकेले रहना है। और अगर अकेले नहीं रहा जाता हो तो ऐसा कोई संग खोजना है परन्तु ऐरे-गैरेके संगमें तो नहीं रहना है। ऐसा एक विचारपूर्वक, अभिप्रायपूर्वक निश्चय होना चाहिये जिसके अनुरूप उसकी प्रवृति होनी चाहिये। वरना लाभ तो नहीं होगा, नुकसान अवश्य होगा, होगा और होगा ही। सत्संगमें जाये और अपनी तैयारी न हो तो शायद लाभ न हो और सत्संग निष्फल जाये परन्तु कुसंगमें जानेपर तो कुसंगके छींटे उड़े बिना रहेंगे नहीं - यह नियम है। क्योंकि उस ओर जाना आसान है, फिसलना आसान है, नीचे गिरना आसान है, ऊपर चढ़नेमें पसीना आ जाये ऐसा है। ऊपर चढ़नेमें शक्तिका प्रयोग है, नीचे गिरनेमें शक्तिकी ज़रूरत नहीं है। सहज ही परिणाम निम्न कोटिमें चले जायेंगे। अतः यह एक विवेक-विचार करनेका विषय है। यह बहुत महत्वपूर्ण मार्गदर्शन है।

मुमुक्षु :-ऐसा कभी दिखता है कि पात्र जीव है लेकिन...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, हो सकते हैं। हाँ, उसका निषेध नहीं कर सकते। निषेध कर सके ऐसा नहीं है। भले ही वांचनकार न हो और...

मुमुक्षु :-किसीके आगे-पीछे पाँच-छः जन घुमते-फिरते हो लेकिन...

पूज्य भाईश्री :- वास्तवमें यह खोजका विषय हो गया न? सामान्यतः बुद्धिमें तो क्या है कि या तो क्षयोपशमके पीछे आकर्षण होता है या त्यागका आकर्षण हो जाता है। धर्मके क्षेत्रमें दो बाह्य चिन्ह आकर्षणके हैं और धोखेमें आनेके कारण भी यही दो चिन्ह है। फिर भी जिसको आत्महित करना है, शुद्धिमें वृद्धि करनी है, अंतरंग शुद्धिमें वृद्धि करनी है ऐसे जीवोंको थोड़ी विचक्षणता होती है। वह जीव विचक्षण है।

मुमुक्षु :- ज्यादा बुद्धिवाले भूलावेमें पड़ सकते हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, पड़ सकते हैं। परन्तु इसे विचक्षणता क्या कहे? जिसको अपने हित-अहितके विषयमें जागृति न आये तो इसे विचक्षणता क्या कहना? बुद्धि भले ही चाहे कितनी हो। उसे विचक्षणता क्या कहना? इस मार्ग संबंधित विचक्षणता तो नहीं गिन सकते। उघाड़ चाहे जितना हो, त्याग चाहे कितना भी हो, परन्तु यह जो अंतरंगमें शुद्धिकी वृद्धि करनेकी line है उसकी विचक्षणता एक अलग प्रकारकी है। जो कि दिखावा करनेका विषय नहीं है परन्तु खुदका गुड़ खुदको चुपकेसे खा लेनेका विषय है। हमें पता चल जाता है कि इसके संगसे मुझे लाभ है। मेरी परिणति इसके संगमें क्या काम करती है - इस परसे खुद समझ लेता है। सामनेवालेके रसको कैसे समझ लेता है? कि यहाँ भीतरमें खुदको वैसा रस उत्पन्न होने लगता है। तुरंत पता लग जाता है। इस विषयमें अगर खुदकी

जागृति होगी तुरंत भीतरमें लाइट होगी ऐसा विषय है, नामुमकिन नहीं है। हालाँकि उस विषयमें खुद जागृत हो तो। विषय बहुत गंभीर है।

यहाँ जो बात ली है इसकी क़ीमत बहुत है, विषय काफ़ी गंभीर है कि चाहे जैसे-तैसेके संगमें रहना उचित नहीं है। तू लाभ न ले तो एक बात है परन्तु नुकसानका धंधा हो जाये - सो तो करने जैसा है ही नहीं। जैसे आदमी व्यापार करते समय कहता है कि, भाई! कमाई न हो तो चलेगा परन्तु पूँजी तो कम होनी ही नहीं चाहिये, पूँजीमें से तो कुछ जाना ही नहीं चाहिये। कमसे कम इतनी सावधानी, फ़िक्र तो रखनी ही होगी। ऐसा विषय है। जहाँ स्वाध्याय-प्रवचन चलता हो वहाँ तो सिद्धांतित general बात ही चलेगी न! general बात चले।

मुमुक्षु :- मुमुक्षुको ज्ञानीके प्रति बहुमानके भाव आते हों और उन्हींका संग करनेका भाव आता हो...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अच्छी बात है। वह अच्छी बात है। इससे क्या है जल्द किसीके कुसंगमें नहीं चढ़ जाता है। यह विशेषता है। वह बचनेका बहुत बड़ा साधन है। सत्पुरुषके प्रति - विद्यमान ज्ञानीके प्रति अत्यंत भक्ति, ये कुसंगसे बचनेका बहुत बड़ा साधन है-यह कहना ग़लत नहीं होगा। बहुत बड़ा साधन है। इसके अलावा अपने स्वरूपके प्रति जानेमें भी बहुत बड़ा साधन है। जो कि ज़्यादा मुश्किल या कठिन नहीं है ऐसा उपाय है। सरल उपाय है। सुगम साधन है। इतनी विशिष्टताका ख़याल रखते हुए उस विषयमें थोड़ा विशेष ज़ोर दिया गया है।

यहाँ पहले तो बात ली है - नुकसानकी और दूसरी लाभकी बात ली है। दोनों प्रतिपक्षकी बातें इस paragraphमें ले ली है कि, *'लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होनेका कारण होगा।'*

प्रश्न :- मुनि लिये उसमें भावलिंगी संत लिये हैं?

समाधान :- मुनि स्वरूपमें झूलते हैं न! मुनियोंका संयम, नियम और तप सबमें आत्मा ही समीप होता है। भावलिंगीको ही आत्मा समीप होता है।

प्रश्न :- उन्हें कहाँ लौकिक संग होता है?

समाधान :- वास्तवमें उन्हें तो लौकिक जनका संग नहीं होता, मुनिको तो लौकिक जनोंका संग नहीं होता। उन्हें तो द्रव्यलिंगीके संगका भी निषेध है। मुनियोंके समूहमें भी उन्हें द्रव्यलिंगी (मुनिका संग निषिध्य है।) अतः दूसरा जो वचन है वह मुनिको लक्ष्यमें रखकर नहीं कहा। मुनिका केवल दृष्टांत लिया है फिर सिद्धांत शुरू कर दिया है कि अब तू तेरे परिणमनकी जाँच कर! हालाँकि मुनिको आत्मा समीपमें रहता है तो समीपमें रखने योग्य तो एक मात्र अपना असंग आत्मतत्व ही है। समीपमें, किसके समीपमें रहना योग्य है? कि अपने असंग तत्वके समीपमें रहने योग्य है। अपने स्वभावके समीप रहने योग्य है अन्य किसीके समीप रहने जैसा नहीं है। क्यों? कि श्रीगुरु स्वयं ऐसे ही रहते हैं। उनका जो बाह्य प्रवर्तन है वह भी ऐसा ही बोध देता है कि कैसे रहना? वह बात दृष्टांतमें ली है। अब यदि तू आत्माकी

साधना करने निकला हो तो किसी लौकिक जनका परिचय क्यों रखना चाहिये?

एक दृष्टांत ले लें कि, मानों किसी जीवने पलटा खाकर अध्यात्म-विषयमें प्रवेश किया, पात्रतामें आया, मुमुक्षुतामें आया कोई जीव। तो पहले उसे जिन-जिन लोगोंका परिचय होता है, जो-जो प्रकार मित्रताका हो, उठना-बैठना जिसके साथ हो उसमें बदलाव आये बिना रहेगा नहीं। सबसे पहले विचार यों आयेगा कि मित्र तो उसे कहते हैं जो सम विचारका धारक हो। समान विचारधाराका धारक हो। सबसे पहले वह जाँच लेता है कि मेरा अबतकका जो परिचय व संग था उसमेंसे सब इस(अध्यात्मकी ओर) झुक जायें यह तो नामुमकिन है या जैसे इस तरफ झुकनेके इच्छुक सबलोग नहीं दिखते। तो स्वतः उन सबका परिचय या संग या तो कम हो जाता है या टूट जाता है। यह बदलाव आ जाता है।

अब जो मुमुक्षु है उसे कहते हैं कि अभी तो इस क्षेत्रमें प्रवेशके इच्छुकको इतना बदलाव आ जाता है तो जो इस क्षेत्रमें , इन मुमुक्षुओंके बीचमें रहता ही हो उसे लौकिक जनोंका परिचय करनेकी बात ही कहाँ उठती है? उसे तो लौकिक जनका परिचय उचित है ही नहीं। लौकिक जनोंके साथ किसी कारणवश मिलना-जुलना हो जाये तो भी उसमें रस नहीं आता। कोई भी मिलने आ जाये और उसके साथ घण्टों तक बातें करने बैठ जाये! और उसमें जगतके समाचार जिसमें ढेरों वारदातें बनती हैं, जिसकी जानकारीके साधन भी होते हैं। दोनोंको जानकारी होनेसे, क्योंकि दोनोंने अखबार पढ़ा हो, T.v. में देखा हो फिर उसकी चर्चामें चढ़ जाये क्योंकि इसमें दोनोंका रस है। कोई अपनी बाज़ारका जो खुदके व्यापारसे संबंध रखता हो वह मिले तो उसके साथ चर्चामें लग जाये। चाहे कोई समाजका आदमी मिले तो उससे चर्चामें लग जाये राजकथा इत्यादि जो विकथाएँ चारों प्रकारकी हैं इसमें से किसी न किसी प्रकारमें जिसका रस हो उसमें चढ़ जाये ये सब लौकिकजनोंका संग हो गया। भले ही मुमुक्षु कहलाते हों परंतु अगर विकथामें चढ़ जाये तो वह लौकिक जन हो गया फिर नाम मुमुक्षु देनेसे कोई मुमुक्षु हो नहीं जाते।

विकथाका रस नहीं होना चाहिये। खुदको रस नहीं होना चाहिये। दूसरा अगर कोई रसपूर्वक बात करे तो खुद उपेक्षित रहे। सामनेवालेको पता चल जाये कि मैं जो बात करता हूँ इसमें हमें कोई रस नहीं है। ताकि उसके रसवृद्धिका कारण नहीं बनता। automatic वह बात पूरी करे। फिर भी वह अपनी बात पूरी न करे तो विनम्रतापूर्वक शान्तिसे कहना चाहिये कि, ठीक है मुझे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है, ठीक है आपने कहा लेकिन मुझे इसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं है। जगतमें ऐसा तो चलता ही रहता है। अनादिसे जगतकी यही स्थिति है और अनन्तकाल पर्यंत ऐसे ही चलनेवाला है। सो तो ऐसे ही चलेगा इसमें हमारी कोई कामकी चीज़ नहीं। इसतरह खुद ऐसे रससे दूर रहें, संग तो निमित्त है परंतु मूलमें तो ऐसे रस लेनेसे खुदको दूर रहना है - इसमेंसे कहनेका तात्पर्य तो इतना है।

अब अगर तू संग करने जायेगा, तुझे रस आयेगा, तुझे रुचि रही और प्रेम हुआ, तुझे अगर लौकिक जनोंका संग करनेका विकल्प खुदको चलाकरके आया तो तेरा पुरुषार्थ अवश्य मंद पड़ जायेगा। तेरा पुरुषार्थ या तो उत्पन्न नहीं होगा या अगर जागृति आयी होगी तो भी छूट जायेगी। 'श्रीमद्जी' यहाँ तक लिखते हैं कि दीर्घकाल पर्यंत सेवन किया हुआ सत्संग, ज्ञानीके संगमें दीर्घकाल पर्यंत रहा हो वह सब अल्पकालके कुसंगसे नष्ट हो जाता है। रंगरागवाले लौकिकजीवोंके संगमें खुद तनिक-सा भी रस ले लेगा या पंचेन्द्रियके विषयमें भी खुद रस ले लेगा तो उसका वैराग्य छूट जानेमें देर नहीं लगती। दीर्घकाल पर्यंत सत्संगमें रहा हो, वैराग्यमें रहा हो, सत्संगमें रहा हो, सब साफ़ हो जानेमें देर नहीं लगती।

प्रश्न :- यों समझे कि उसकी नींव कच्ची है?

समाधान :- नींव ज़रूर कच्ची और कमज़ोर है। वैसे भी सामान्यतः मुमुक्षुकी स्थिति बहुत कमज़ोर होती है। मुमुक्षुता अर्थात् बहुत कमज़ोर अवस्था। जैसे बालक खड़ा होकर चलना सीखता है तब कभी लुड़क जाता है, मुश्किलसे एक-एक कदम रख पाता है। - वैसी कमज़ोर स्थिति है। मुमुक्षुकी स्थिति कोई बलवान स्थिति नहीं होती अतः उसमें विशेष सावधानी रखनेका बोध दिया है, उपदेश दिया है।

*

(प्रवचनका शेष अंश आगेके अंकमें...)

(पृष्ठ संख्या ०२से आगे...)

साधारणको अनुभवगम्य है। अतः हमें अपने आत्माको पूछना है कि तुझे ज़रूरत कितनी है? तुझे अपनी आत्मप्राप्ति, स्वानुभवकी ज़रूरत कितनी है? या बिना इसके हमारा जो जीवन जा रहा है इससे हमें कोई आपत्ति नहीं है! और जो चलता है सो ठीक है! अगर तेरा अभिप्राय ऐसा है कि, नहीं! नहीं! स्वानुभव बिना भी हमें चलता है, खाते हैं, पीते हैं और आरामकी नींद भी लेते हैं। खाना हजम हो जाता है और नींद आ जाती है, ज्यादा कोई आपत्ति है नहीं। सबको छोटी-मोटी और थोड़ी-बहुत तो होती है इसमें हमें भी हो तो यह गौण बात है। कुल मिलाकर कोई आपत्ति नहीं है, चलता है। इसतरह जिसको चलता है उसे तो कभी प्राप्तिका अवसर नहीं है। जब, अब नहीं चलेगा ऐसी ज़रूरत जब लगती है तब जीव वास्तवमें पुरुषार्थमें अग्रेसर होता है। वह पुरुषार्थमें लगता है। वह पुरुषार्थमें अपने परिणामोंको जोड़ता है और उसका कार्य सम्पन्न होता है। बाकी जिसको चलता है, उसका कार्य कभी नहीं होता। अब यह जाँच कर लेनी है कि हमें चलता है कि नहीं चलता है। बस! इतनी सी बात है। अगर चलता है तो तूने बातको गौण करके एक ओर कर दी है। पुरुषार्थ शुरू होनेका अवसर या प्रसंग नहीं आयेगा।

*

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल क्र.-१६४, दि.१७-०७-८७, प्रवचन क्र.-१२६, 'अध्यात्म सुधा' (गुजराती) भाग-४, पन्ना क्र. - ५४४,५४५)

'आत्मिक सुख'

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

सुखका (अतीन्द्रिय आनंदका) **अनुभव हुआ... सो, किसीको पूछना नहीं पड़ता; दूसरे 'ना' कहें तो कहें, अपनेको तो प्रत्यक्ष सुख आ रहा है न! ३४४.**

*

बिजीलीका करंट लगते ही भय लगता है और उससे हटना चाहते हैं। लेकिन त्रिकाली स्वभावमें प्रवेश करते ही आनंदकी ऐसी सनसनाहट होती है कि उस आनंदसे क्षण मात्र भी हटना नहीं चाहते हैं। ३७१.

*

ध्रुवगुफाके अंदर चले जावो – वहाँ आनंद और सुखका निधान भरा है, उसको नित्य भोगो! ३७९.

*

विकल्प, दुःखरूप लगना – यह भी नास्ति है। अस्तिमें तो 'मैं सुखसे भरपूर हूँ, सुखकी खान हूँ।' ४१७.

*

सहज सुख (अन्य) **सभीका सहज ही निषेध करता है। ४४५.**

*

आत्माके एक-एक प्रदेशमें अनंत-अनंत सुख भरा है – ऐसे असंख्य प्रदेश सुखसे ही भरपूर हैं; चाहे जितना सुख पी लो! कभी खूटेगा ही नहीं। हमेशा सुख पीते रहो फिर भी कमी नहीं होती। ४५३.

*

यथार्थ निश्चयमें सुख प्रकट होता है। ६०४.

*

(मूलतः) **'वर्तमानमें ही पूर्ण हूँ,'** (पर्यायमें भी) **प्रयोजन सुखका है, ज्ञानका नहीं।**

द्रव्यदृष्टि प्रकाश – ५९२

परुचिका दंड तो भुगतना ही पड़ेगा !!

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

प्रश्न :– अन्य पदार्थके प्रति परिणाम चले ही जाते हैं, चले ही जाते हैं तो क्या करें?

समाधान :– खुदने इतना रस लिया हुआ है, हमने अपने स्वरूपकी इतनी विराधना की है। हमने ही परपदार्थको इतनी कीमत और महिमा दे रखी है और इस महिमाके वश रस लिया है तो इसका दण्ड भी भुगतना पड़ेगा, अवश्य भुगतना पड़ेगा ही! जो रुचिपूर्वक परद्रव्यका सेवन करे उसे संसार दुःख न हो – ऐसा कभी नहीं बनता। – यह सिद्धांत है। यह असंभवित है! उसे दुःख होगा, होगा और होगा ही। वह जीव दुःखी होगा, होगा और होगा ही। नहीं होनेका सवाल नहीं। अतः अन्य पदार्थके प्रति परिणाम जाये तब अरुचि हो, निषेध आये तो वह उचित है। नहीं होवे तो अनुचित है, अनर्थ है, आत्माको अवश्य नुकसान और दुःखका बीज़ है, कारण है।

*

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल क्र.–१३६, दि.१९–०६–८७, प्रवचन क्र.–१०५, 'अध्यात्म सुधा' (गुजराती) भाग–४, पन्ना नं – १८९)

आवश्यक सूचना

''स्वानुभूतिप्रकाश'' मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको (e-copy) - pdf. की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करें।
श्री नीरव वोरा – ९८२५०५२९१३

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जून–२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
डॉ. गीताबहिन महेशभाई महेता और
डॉ. महेशभाई जे. महेता, मुंबई
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

आत्मार्थीका ध्येय क्या होना चाहिये ?

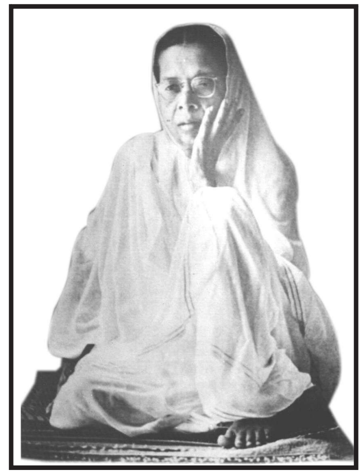

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी-सीडी -१५ -C

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

मुमुक्षु :- जिनको साधक भूमिका प्राप्त हुयी है उनके लिये बात हुयी, लेकिन जो साधक भूमिका में नहीं पहुँचे हैं उसके लिये क्या करना?

समाधान :- उसे उसका अभ्यास करना। साधकदशा में नहीं पहुँचे उसका उसे अभ्यास करना। उसे यह सब जानने के लिये है कि आश्रय लेंगे तो ही आत्मा का सम्यग्दर्शन होगा। ऐसा जाने और आश्रय करे तो स्वानुभूति होती है। इसप्रकार यदि उसके ज्ञान में आये तो वह नक्की करे और उसप्रकार का प्रयत्न करे कि आत्मा के आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन होता है, अन्य कोई विधिसे नहीं होता। इसलिये आत्मा का आश्रय कैसे लिया जाये, उसका प्रयत्न करे, उसके विचार करे, उसप्रकार का वैराग्य लाये, उसप्रकार की महिमा लाये, सब करे। तत्त्व के विचार करे। आत्मा का आश्रय कैसे प्रगट हो, उसकी जिज्ञासा, उसकी तैयारी करे, उसका अभ्यास करे। भूमिकावालों के लिए वह है।

जिसे प्रगट हुआ, जिसे प्रगट होता है वह कैसे प्रगट होता है और उसे कैसी स्वानुभूति होती है उसे खुद जाने, उसकी महिमा लाये और उसके मार्गपर जाने का स्वयं प्रयत्न करे। उसके लिये वह है। उस जात के विभावसे स्वयं भिन्नता करे, वैराग्य लाये, विचार करे, तत्त्व का निर्णय करे, द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करे और आत्मा का आलम्बन ले कि द्रव्य मुख्य है और पर्याय उसके साथ परिणति-पर्याय प्रगट होती है। पर्याय का वेदन होता है और द्रव्य का आश्रय होता है। इसप्रकार स्वयं विचार करके नक्की करे, फिर उसरूप पुरुषार्थ करे।

मुमुक्षु :- साधक भूमिका में नीचे जैसा है उनके लिये और साधकों के लिये मार्ग एक ही है?

समाधान :- एक ही मार्ग है। साधक के लिये और जिज्ञासु के लिये एक ही मार्ग है। जिज्ञासु को भी एक ही ध्येय रखना है। आत्मार्थी को ध्येय एक ही होना चाहिये कि सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? और सम्यग्दृष्टि को आत्मा का आश्रय है वैसा आश्रय मुझे कैसे प्रगट हो? उसप्रकार की उसे भावना, जिज्ञासा (होनी चाहिये)। एक मार्ग पर जाना है। जिज्ञासु को भी वही करना है कि भव का अभाव कैसे हो? सम्यग्दर्शन प्रगट हो, कैसे हो? जिज्ञासु को भी वह करना है। उसके लिये जबतक वह नहीं हो, तबतक अशुभभावसे बचने हेतु शुभभाव में देव-गुरु-शास्त्र की महिमा लाये, शास्त्र के विचार करे, परन्तु ध्येय एक ही कि सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? आत्मा का आश्रय कैसे प्रगट हो? भव का अभाव कैसे हो? ध्येय एकही होना चाहिये। एक शुभभाव करके पुण्य बन्धे ऐसा पुण्य का हेतु नहीं होना चाहिये,

परन्तु भव का अभाव कैसे हो? आत्मा का आश्रय कैसे प्रगट हो? शुद्धात्मा कैसे प्रगट हो? ऐसा हेतु, ध्येय जिज्ञासु को भी वैसा ही होना चाहिये।

मुमुक्षु :– ज्ञान और राग को लक्षणभेदसे सर्वथा भिन्न करो तो ही सर्वज्ञस्वभावी शुद्ध जीव लक्ष्य में आ सकता है। ज्ञान और राग का लक्षण जानकर ज्ञान उपादेय और राग हेय, ऐसा नक्की करनेपर भी शुद्ध जीव लक्ष्य में क्यों नहीं आता?

समाधान :– उपादेय और हेय सब यथार्थ हो तो शुद्ध जीव लक्ष्य में आये बिना रहता नहीं। राग भिन्न और ज्ञानलक्षण भिन्न, दोनों लक्षण को स्वयं भिन्न-भिन्न पहचाने तो उसे सर्वज्ञस्वभाव आत्मा नक्की हो सकता है। जो जाननेवाला है वही मैं हूँ। जो जाननेवाला है वह स्वतःसिद्ध जाननेवाला है। स्वतःसिद्ध जाननेवाले के ज्ञान की कोई मर्यादा नहीं होती। वह पूर्ण जानता है। इसलिये सर्वज्ञशक्तिसे भरा आत्मा है वह पूर्ण जानता है। द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, द्रव्य-क्षेत्र-काल सब जाने। उसमें उसे मर्यादा नहीं होती कि इतना जाने और इतना नहीं जाने। उसमें काल की मर्यादा, क्षेत्र की कोई मर्यादा नहीं होती। एक समय में सब जाने। ऐसा उसका ज्ञायकस्वभाव अनन्त-अनन्त ज्ञायक (है)। जो स्वतः ज्ञायक है उसमें अनन्तता भरी है। ऐसा सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का है, वह नहीं जाने ऐसा ज्ञायक स्वभाव में नहीं होता।लेकिन वह निर्णय कब करे? कि मैं रागसे भिन्न ज्ञायकस्वभावी हूँ, ऐसे ज्ञायक का यथार्थ लक्षण पहचानकर निर्णय करे तो ऐसे सर्वज्ञस्वभाव की उसे प्रतीति होती है।

* (तत्त्वचर्चाका शेष अंश आगेके अंकमें...)

(पृष्ठ संख्या १८से आगे...)

योग्य या आराधने योग्य नहीं है। मात्र आत्मस्थिति है जिनकी ऐसे सत्पुरुषसे ही आत्मा अथवा आत्मधर्म श्रवण करने योग्य है, यावत् आराधने योग्य है।

*

पत्रांक-४०४

बंबई, भादों सुदी १०, गुरु, १९४८

स्वस्ति श्री स्तंभतीर्थ शुभस्थानमें स्थित, शुभवृत्तिसम्पन्न मुमुक्षुभाई कृष्णदासादिके प्रति,

संसारकालसे इस क्षण तक आपके प्रति किसी भी प्रकारका अविनय, अभक्ति, असत्कार अथवा वैसा दूसरे अन्य प्रकार संबंधी कोई भी अपराध मन, वचन, कायाके परिणामसे हुए हों, उन सबके लिये अत्यंत नम्रतासे, उन सर्व अपराधोंके अत्यंत लय परिणामरूप आत्मस्थितिपूर्वक मैं सब प्रकारसे क्षमा माँगता हूँ, और उन्हें क्षमा करानेके योग्य हूँ। आपका, किसी भी प्रकारसे उन अपराधादिकी ओर उपयोग न हो तो भी अत्यंतरूपसे, हमारी वैसी पूर्वकालसंबंधी किसी प्रकारसे भी संभावना जानकर अत्यंत रूपसे क्षमा देने योग्य आत्मस्थिति करनेके लिये इस क्षण लघुतासे विनती है। अभी यही।

*

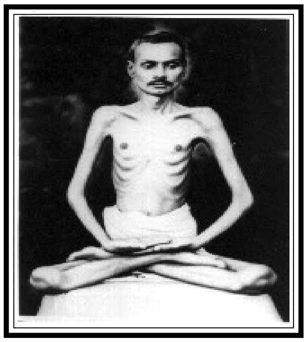

- परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक – ४०२

बंबई, भादों सुदी ७, सोम, १९४८

उदय देखकर उदास न होवें।

स्वस्ति श्री सायला शुभस्थानमें स्थित, मुमुक्षुजनके परम हितैषी, सर्व जीवोंके प्रति परमार्थ करुणादृष्टि है जिनकी, ऐसे निष्काम, भक्तिमान श्री सुभाग्यके प्रति,

श्री 'मोहमयी' स्थानसे...के निष्काम विनयपूर्वक यथायोग्य प्राप्त हो।

संसारका सेवन करनेके आरंभकाल (?) से लेकर आज दिन पर्यंत आपके प्रति जो कुछ अविनय, अभक्ति, और अपराधादि दोष उपयोगपूर्वक अथवा अनुपयोगसे हुए हों, उन सबकी अत्यंत नम्रतासे क्षमा चाहता हूँ।

श्री तीर्थंकरने जिसे मुख्य धर्मपर्व गिनने योग्य माना है, ऐसी इस वर्षकी संवत्सरी व्यतीत हुई। किसी भी जीवके प्रति किसी भी प्रकारसे किसी भी कालमें अत्यंत अल्प मात्र दोष करना योग्य नहीं है, ऐसी बातका जिसमें परमोत्कृष्टरूपसे निर्धार हुआ है, ऐसे इस चित्तको नमस्कार करते हैं, और वही वाक्य मात्र स्मरणयोग्य ऐसे आपको लिखा है कि जिस वाक्यको आप निःशंकतासे जानते हैं।

'रविवारको आपको पत्र लिखूँगा', ऐसा लिखा था तथापि वैसा नहीं हो सका, यह क्षमा करने योग्य है। आपने व्यवहार प्रसंगके विवरण संबंधी पत्र लिखा था, उस विवरणको चित्तमें उतारने और विचारनेकी इच्छा थी, तथापि वह चित्तके आत्माकार होनेसे निष्फल हो गयी है, और अब कुछ लिखा जा सके ऐसा प्रतीत नहीं होता, जिसके लिये अत्यंत नम्रतासे क्षमा चाहकर यह पत्र परिसमाप्त करता हूँ।

सहजस्वरूप।

*

पत्रांक–४०३

बंबई, भादों सुदी १०, गुरु, १९४८

जिस जिस प्रकारसे आत्मा आत्मभावको प्राप्त हो वह प्रकार धर्मका है। आत्मा जिस प्रकारसे अन्यभावको प्राप्त हो वह प्रकार अन्यरूप है, धर्मरूप नहीं है। आपने वचनके श्रवणके पश्चात् अभी जो निष्ठा अंगीकृत की है वह निष्ठा श्रेययोग्य है। दृढ़ मुमुक्षुको सत्संगसे वह निष्ठादि अनुक्रमसे वृद्धिको प्राप्त होकर आत्मस्थितिरूप होती है।

जीवको धर्म अपनी कल्पनासे अथवा कल्पनाप्राप्त अन्य पुरुषसे श्रवण करने योग्य, मनन करने

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १७ पर..)

‘स्वानुभूतिप्रकाश’ पत्रिका सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

जयजिनेन्द्र! इससे यह सूचित किया जाता है कि ‘स्वानुभूतिप्रकाश’ आध्यात्मिक मासिक पत्रिका हिन्दी/गुजरातीमें पिछले २८ सालसे आपके स्वाध्याय हेतु भेजी जा रही है। अब इसे काफ़ी समय होनेसे कई पते बदल चुके हो या पत्रिकाका सदुपयोग न होकर किसी भी प्रकारकी असातना होनेकी संभवितताको देखते हुए यह पत्रिकाको आगे प्राप्त करनेके इच्छुक सभी मुमुक्षुओंको पुनः अनिवार्यरूपसे अपने पतेका **registration** करवाना होगा – ऐसा ट्रस्ट द्वारा नक्की किया गया है।

इसके तहत आगामी अक्टूबर–२०२६ तककी समयसीमामें अपने पतेकी पूरी जानकारी नीचे दिये गये फॉर्ममें लिखकर इसकी फ़ोटो हमारे **whats app** नं. ९४०८३०३१५२ पर भेजना होगा। नवम्बर–२०२६ से केवल पुनः **registered** पते पर यह पत्रिका भेजी जायेगी। जो मुमुक्षु अपना **registration** नहीं करवायेंगे उन्हें इस पत्रिकाकी उपयोगिता एवं आवश्यकता नहीं है यह समझकर उन्हें यह पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। कृपया इस बातको ध्यानमें लेंवे।

आपको हार्ड कॉपी या **pdf file** या दोनों – जिसकी भी आवश्यकता हो उसे बॉक्समें टिक करें।

–प्रबंध ट्रस्टी

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

हार्ड कॉपी ☐ **pdf** फ़ाइल ☐

वर्तमान रजिस्टर्ड नं. :- ____________

नाम :- ____________________________________

पता :- ____________________________________

____

पिनकोडः– ____________________________________

मोबाइल नं :- ________________

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

Printed Edition : **3470**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001